ISSN 2454-5163

26 अक्टूबर 2021, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 40, अंक 04, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

श्री बाहुबली क्षेत्र दिगम्बर जैन मंदिर, कुम्भोज (महाराष्ट्र)

वीतराग–विज्ञान (459)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–4, बापूनगर, जयपुर – 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7000
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	**10000**

ज्ञानदान : सर्वोत्तम उपकार

प्यासों को पानी पिलाकर उनका मात्र दो घण्टे का दुःख दूर किया जा सकता है, भूखों को भोजन देकर मात्र आठ घण्टे की भूख मिटाई जा सकती है, बीमारों को औषधिदान देकर किसी बीमारी विशेष से चार–छः माह को राहत दिलाई जा सकती है, वस्त्र विहीन दरिद्रियों को वस्त्रों का दान देकर उसकी क्षणिक लाज बचाई जा सकती है।

आहारदान, औषधिदान और अभयदान के नाम पर क्षणिक दुःख दूर किया जा सकता है; परन्तु ऐसा करने से अनन्त जीवों के अनन्तकाल से हो रहे अनन्त दुख दूर नहीं किए जा सकते।

तत्त्वज्ञान का दान देना ही सर्वोत्तम उपकार है। तीर्थंकर आदि भी ऐसा ही उपकार करते हैं। अत: क्यों न अपने शेष जीवन को तत्त्वाभ्यास एवं तत्त्वज्ञान के प्रचार–प्रसार में ही सम्पूर्णतया समर्पित कर दिया जाय? और इसके लिए जिन साधनों की आवश्यकता हो; उन सभी साधनों को जुटाने में अपने अर्जित धन का भी सदुपयोग क्यों न किया जाये?

– अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : ४० (वीर नि. संवत् २५४७) ४५९/अंक : ४

निज हित कारज करना भाई!

निज हित कारज करना भाई,
निज हित कारज करना।
जनम मरन दुख पावत जातैं,
सो विधिबंध कतरना।।टेक।।

ज्ञानदरस अर राग फरस रस,
निजपर चिह्न भ्रमरना।
संधि भेद बुधि छैनीतैं कर,
निज गहि पर परिहरना।।१।।

परिग्रही अपराधी शंकै,
त्यागी अभय विचरना।
त्यौं परचाह बंध दुखदायक,
त्यागत सब सुख भरना।।२।।

जो भवभ्रमन न चाहे तो अब,
सुगुरु सीख उर धरना।
दौलत स्वरस सुधारस चाखो,
ज्यौं विनसै भवभरना।।३।।

– कविवर पण्डित दौलतरामजी

मेरा वीतराग पद!

आत्मा का आनन्दमय स्वभाव त्रिकाल ध्रुवरूप है। उसकी दृष्टि करके उसमें लीनता करना अनुभव है और वह मोक्ष का मार्ग है। आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है, उसकी रुचि करके और राग की रुचि छोडकर जिस क्षण आत्मा के आनन्द का अनुभव हो वह निश्चय रत्नत्रय है। साधकदशा में शुभराग आने पर भगवान की प्रतिमा का बहुमान, भक्ति आदि होते है। क्यों? स्वसंवेदनरूप वीतराग मुद्रा देखकर स्वयं अपना स्वसंवेदनरूप अपना स्वरूप विचारता है। मेरा आत्मा राग से अथवा पर से अनुभव में आवे वैसा नहीं; परन्तु ज्ञान से ही स्वसंवेदन में आने योग्य है - ऐसे भानसहित भगवान की वीतराग मुद्रा देखकर स्वयं उसका विचार करता है।

अहो ! इस स्वसंवेदन द्वारा राग टालकर भगवान चिदबिम्ब-जिनबिम्ब अक्रिय वीतराग हुए। मेरा स्वरूप भी ऐसा ही चिद्बिम्ब-जिनबिम्ब है। जो ये वीतराग भगवान हुए वे भी पूर्व में राग वाले थे और स्वरूप की लीनता द्वारा उस राग को टालकर वीतराग हुए हैं, सर्वज्ञ हुए हैं। वे भी पूर्व में अज्ञानी और रागी थे। तत्पश्चात् स्वरूप का भान करके आत्मा के स्वसंवेदन से वे राग टालकर वीतराग सर्वज्ञ हुए। उसीप्रकार मैं वर्तमान में सराग हूँ; परन्तु राग मेरा स्वरूप नहीं है, मैं अपने स्वरूप के संवेदन द्वारा उस राग को मिटाकर वीतराग होऊँगा।

व्यवहार रत्नत्रय का भाव राग है, चिदानन्द स्वरूप में लीनता द्वारा सर्व राग के मिटने से मैं मेरे वीतराग पद को पाऊँगा।

- अनुभवप्रकाश प्रवचन, पृष्ठ : २३५

सम्पादकीय

(गतांक से आगे....)

भरत का अन्तर्द्वन्द्व : नाटक

पहला अंक

पाँचवाँ दृश्य

(महाराज भरतेश्वर सेना सहित दिग्विजय यात्रा पर प्रयाण करते हैं। गंगा नदी के किनारे पर महापडाव डालते हैं और वहाँ गंगा नदी के इस ओर से आर्य और पूर्व की ओर से म्लेच्छ मुकुटबद्ध राजाओं को आमंत्रित करते हैं। जब लगभग सभी लोग उपस्थित हो जाते हैं तो सबसे पहले महामात्य मधुर शब्दों में सबका स्वागत करते हैं और सम्राट भरत से उद्बोधन देने के लिए निवेदन करते हैं। सम्राट भरत सबको संबोधित करते हैं।)

सम्राट भरत – देश के विकास के लिए हम सबको संगठित होना होगा। यह भरतक्षेत्र प्राकृतिकरूप से ही छह खण्डों में बटा हुआ है, जिसमें एक आर्य खण्ड और पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं। उनमें भी हमने और भी अनेक टुकडे कर रखे हैं। इस कारण देश का विकास नहीं हो पाता। इसलिए हम चाहते हैं कि हम एक महा संगठन बनायें।

महा संगठन की उपयोगिता के संदर्भ में अब हमारे महामात्य दक्षिणांक आप सबको संबोधित करेंगे।

महामात्य दक्षिणांक – हमारे प्रिय सभी मुकुटबद्ध राजागण! महाभाग्य से हमारे पास गंगा जैसी महान नदी है; जो बारह मास बहती

है और इसमें हिमवन पर्वत से आया हुआ निर्मल जल प्रवाहित होता रहता है, पर वह सम्पूर्ण पवित्र जल खारे समुद्र में चला जाता है।

इस पर अनेक विशाल बाँध बन सकते हैं; पर हमने इसे अनेक टुकड़ों में बाँट लिया है, जिस राज्य के पास से यह निकलती है, उसने इसके इतने हिस्से को अपना मान लिया।

अरे यह तो सम्पूर्ण भरतक्षेत्र की है, सबकी है। यदि हम सब संगठित हो जाँय तो इस पर अनेक विशाल बाँध बंध सकते हैं; जिससे बहुत बड़े भूभाग की सिंचाई हो सकती है। इतना अनाज पैदा हो सकता है कि सभी भरतक्षेत्र वासियों का पेट आसानी से भर जाय।

उस अनाज को सारे देश में पहुँचाने के लिये मार्ग बनवाने होंगे, नदियों पर पुल बनवाने होंगे; उनके माध्यम से सबके पास अनाज पहुँचाया जा सकता है।

सम्राट भरत – भाई! हम आपको जीतने नहीं, संगठित करने निकले हैं। हमें जीतना तो है, पर आपको नहीं, आपके दिल को जीतना है।

एक मुकुटबद्ध राजा – सम्मानीय महामात्यजी! इस महा संगठन का स्वरूप क्या होगा और उसका नेता कौन होगा, उसे चलायेगा कौन?

महामात्य दक्षिणांक – सम्राट भरत ही इसके नेता होंगे। उनके घर में चक्ररत्न प्रगट हुआ है। वे सब प्रकार से योग्य हैं। उनके चित्त में ही इस महासंगठन को बनाने का विचार आया है। सम्राट भरत आप सबके सहयोग से इसे चलायेंगे।

सम्राट भरत – अभी तक मैंने और महामात्यजी ने जो बातें आप सबसे कहीं हैं, उनका सार यही है कि आपके राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था आज के समान ही आपके हाथ में रहेगी और केन्द्रीय संगठन में भी आपका महत्वपूर्ण सहयोग रहेगा।

एक राजा – महाराज! आप ठीक कहते हैं, पर इस बारे में तो सोचना पड़ेगा?

सम्राट भरत – हाँ भाई! सोच लीजिए; अच्छी तरह सोच लीजिए।

दूसरा राजा – अरे भाई! इसमें सोचने की क्या बात है? इसमें तो हम सबके हित की ही बात है।

पहला राजा – हाँ, है तो सबके हित की ही बात, फिर भी हर काम सोच-समझकर ही करना चाहिए।

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होय हँसाय।।

महामात्य – भाई ! बात तो तुम ठीक कहते हो। पर यह भी जानते हो कि नहीं कि, **उठी हाट आठवें दिन बैठती है।**

बात गई तो गई, गई बात फिर हाथ में आसानी से नहीं आती।

अतः जो कुछ सोचना हो, अभी यहीं सोच लो। ऐसे प्रस्ताव बार-बार नहीं मिलते।

तीसरा राजा – महामात्य ठीक कहते हैं।

(सभी राजाओं की ओर संकेत करते हुए)

बोलो भाई ! बोलो – क्या करना है?(–सभी एक साथ बोलते हैं)

हमें तो स्वीकार है, स्वीकार है; ऐसे प्रस्ताव बार-बार नहीं मिलते।

एक म्लेच्छ राजा – महाराज भरतेश्वर! आप म्लेच्छ राजाओं से रोटी-बेटी का व्यवहार तो रखते नहीं। ऐसी स्थिति में यह मित्रता का व्यवहार कैसे चलेगा?

सम्राट भरत – नहीं भाई! नहीं; ऐसी कोई बात नहीं है।

म्लेच्छ राजा – यदि ऐसी बात नहीं है तो क्या आप हमसे रोटी-बेटी का व्यवहार करेंगे? हमारी बहिन-बेटियों से शादी-विवाह करेंगे?

सम्राट भरत – क्यों नहीं?

म्लेच्छ राजा – अच्छा तो महाराज! फिर हम अपनी बहिन-बेटियाँ आपको देना चाहेंगे।

चौथा राजा – हम सब आपके साथ हैं; पर आपको हमारा आतिथ्य स्वीकार करना होगा, हमारी भेंट स्वीकार करनी होगी और हमारी बहिन-बेटियों को भी सादर स्वीकार करना होगा।

हम सबको सच्चे दिल से अपनाना होगा।

पाँचवाँ राजा – महाराज ! आपकी यह बात हम सबको बहुत अच्छी लगी कि आप किसी को अपने आधीन नहीं करना चाहते; अपितु सहयोगी बनाना चाहते हैं, साथी बनाना चाहते हैं।

यदि आप हमारी बहन-बेटियों को भी स्वीकार कर लेंगे तो फिर आप हम सबको साथी-सहयोगी ही नहीं, संबंधी (रिश्तेदार) बना लेंगे।

(भरतराज ने चुप रहकर, पर किंचित् मुस्कुराकर उन सबका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो सब लोगों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।)

(फिर सभी आर्य और म्लेच्छ मुकुटबद्ध राजाओं ने जय-जयकार के साथ भरतेश्वर को हारों से लाद दिया, उपहारों से सम्मानित किया और उसके बाद उनसे अपनी बहिन-बेटियों की शादी कर दी।)

(लोग आपस में चर्चा कर रहे थे –)

एक राजा – गजब हो गया, भरतेश्वर ने आर्य राजाओं के साथ-साथ म्लेच्छ राजाओं की बहिन-बेटियों के साथ शादी करके सबके मन को जीत लिया और नीच-ऊँच का भेदभाव भी मिटा दिया।

दूसरा राजा – गजब तो किया ही है। अरे रे ! उन्होंने कितने सहज भाव से हम सबको अपना बना लिया।

(वहाँ से राजाओं के जाने के बाद भरतराज ने महामंत्री और सेनापति को बुलाकर उनसे एकान्त में कहा –)

महाराज भरत – मंत्रीवर, सेनापतिजी! यह काम तो बहुत आसानी से हो गया।

महामात्य – हाँ, महाराज ! लोग समझदार हैं। सर्वशक्तिमान होने पर भी आपने तथ्यों को जितनी सरलता से प्रस्तुत किया, करवाया; वह अद्भुत था, बेमिसाल था। उनके तो भाग्य जाग गये।

सेनापति – हाँ, महाराज! महामंत्रीजी सत्य कह रहे हैं। आपके पुण्य और पवित्रता के सामने कोई नहीं टिक सकता। आप सभी का भला चाहते हैं। आपके हृदय में सभी के प्रति अगाध वात्सल्य है।

सम्राट भरत – यह सब तो ठीक, पर यह स्वागत-सत्कार और कन्याओं की भेंट मेरे दिल को स्वीकार नहीं है।

इस भेंट का हम क्या करेंगे और ये शादियाँ तो मेरे गले उतरती ही नहीं है।

महामात्य – महाराज! हम अच्छी तरह जानते हैं कि आपके हृदय में ऐसे कोई भाव नहीं हैं; पर यह राजनीति की आवश्यकता है। हमने जो संगठन बनाया है; उसको स्थिर करने के लिए एकमात्र उपाय है।

परस्पर विश्वास पैदा करने का इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं हो सकता।

सेनापति – महाराज! वे कन्यायें देकर स्वयं को सुरक्षित करते हैं और आप उन्हें स्वीकार कर संगठन को स्थिरता प्रदान करते हैं।

महाराज भरत – यह सब तो ठीक, पर इस तरह परिवार बढ़ाते जाना समझदारी का काम तो नहीं है।

महामात्य – क्यों नहीं, संगठन को निरन्तरता प्रदान करना तो आपका काम है। इन सम्बन्धों से जो अपनापन आता है, वह अन्य साधनों से नहीं आ सकता।

महाराज भरत – जो कुछ भी हो, पर मुझे तो यह अच्छा नहीं लगता।

महामात्य – महाराज! एक बात हमारी भी मान लीजिये। इसे ऐसा ही चलने दीजिये।

महाराज भरत – फिर भी............।

महामात्य – फिर भी क्या? अब आप उनके जमाई बन गये। कोई भी व्यक्ति अपने जमाई का अहित नहीं चाहता; अतः उनसे कभी धोखा नहीं होगा।

महाराज भरत – पर क्या यह भाई-भतीजावाद नहीं हो जावेगा।

महामात्य – महाराज! भाई-भतीजे ही तो असली साथी होते हैं। यदि वे सब प्रकार से योग्य हैं, समर्थ हैं तो उनको दूर रखना भी तो ठीक नहीं है। उनका साथ रहना और उन्हें साथ रखना स्वाभाविक है, सहज है। इस संबंध में आप कोई विकल्प न करें।

सम्राट भरत – अरे, भाई! विकल्प तो होता ही है। इस तरह संसार में उलझते जाना मेरी समझ में नहीं आता।

महामात्य – महाराज! यह तो आपको समझना ही होगा। हम हाथ जोडकर निवेदन करते हैं कि आप इतनी बात हमारी भी मान लीजिए।

जय बोलो – भगवान ऋषभदेव की जय।

(नेपथ्य में मधुर संगीत के साथ मन्द स्वर में गीत चल रहा है -)

(वीर)

है नहीं भावना मेरी यह सब दुनियाँ मेरे वश में हो ।
मैं तो बस यही चाहता हूँ यह सारा जग स्वाधीन रहे ।।
सब मिलकर सम्पूर्ण क्षेत्र को विकसित कर सम्पन्न बनें ।
रे विकास के कामों में सारे जन भागीदार बनें ।। १ ।।

इस यात्रा में सहयोग करें, सहयोग करें समझाने में ।
इस भरतक्षेत्र को एक अखण्डित करने और कराने में ।।
जब हम सब होंगे एक हमारा भरतक्षेत्र विकसित होगा ।
हम सब होंगे सम्पन्न हमारा मन भी आनन्दित होगा ।। २ ।।

हम यही चाहते हैं कि आप प्रस्ताव हमारा स्वीकारें ।
अर विकास के कामों में भी हाथ बँटाना स्वीकारें ।।
अरे आज के ही समान सब राज्य व्यवस्था आप करें ।
बनें हमारे सहयोगी सब, सब कामों में साथ रहें ।। ३ ।।

यों पूर्व दिशा के सभी नरेशों के दिल मीठे बोलों से ।
जीता भरतेश्वर ने सबको मीठे-मीठे सम्बोधन से ।।
सबने उनका आतिथ्य किया अर लाद दिया है हारों से ।
अर अपनी बहिन-बेटियाँ दी सन्मान किया उपहारों से ।। ४ ।।

इसतरह भरत ने राजाओं को अपनेपन से मोड़ लिया ।
सम्बन्ध बनाकर प्रेमभाव से नजदीकी से जोड़ लिया ।।
सबको अपना पक्का साथी अर हित का चिन्तक बना लिया।
लड़कर मिल सकता नहीं कभी अपनाकर वह सब प्राप्त किया ।। ५ ।।[1]

पटाक्षेप

१. अध्याय ३, छन्द २३, २४, २५, २६, २७

छठवाँ दृश्य

(पूर्व दिशा के राजाओं के दिल जीतने के उपरान्त सेना सहित सम्राट भरत दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर चले।

वहाँ उन्होंने वही रीति-नीति अपनाई, जिसका सफल प्रयोग वे पूर्व दिशा में कर चुके थे।

दक्षिण और पश्चिम की ओर प्रस्थान करने के पूर्व उन्होंने अपने मंत्रियों और सेनापतियों से विचार-विमर्श करने के लिए एक मीटिंग बुलाई और उसमें विचार-विमर्श किया।)

महाराज भरत – पूर्व दिशा का कार्य तो बढ़ी सहजता से निपट गया; पर यह तो हमारे नजदीक का क्षेत्र था। सभी लोग लगभग जान-पहिचान के थे; दक्षिण और पश्चिम का क्षेत्र तो सुदूरवर्त्ती है।

यद्यपि हमें वहाँ भी वही रीति-नीति अपनानी है, तथापि वहाँ कुछ विशेष सावधानी अपेक्षित है।

महामात्य – हाँ महाराज! यह बात तो ठीक है। हम लोग पूरी सावधानी रखेंगे।

सेनापति – महाराज! यहाँ के समाचार वहाँ पहुँच चुके हैं। अतः विशेष कठिनाई नहीं होगी। फिर भी सावधानी तो रखना ही है।

(सभी लोग प्रस्थान करते हैं और यथासमय वहाँ पहुँचते हैं। वे जितनी कठिनाई समझते थे, उतनी कठिनाई नहीं हुई। वहाँ एक प्रकार से वातावरण तैयार ही था। वहाँ उसीप्रकार का समझौता आसानी से हो गया; जिसप्रकार का समझौता पूर्व दिशा वालों से हुआ था। दक्षिण और पश्चिम दिशावालों ने भी भरत का स्वागत किया, सत्कार किया,

मालाओं से लाद दिया और बहिन-बेटियाँ भी दी। भरत ने भी उन्हें यथायोग्य महत्व दिया।

इसप्रकार तीन खण्ड सहज ही जीत लिये गये। सभी लोग आपस में मिले और एकदम प्रसन्नता का वातावरण बन गया।

भरत ने महामात्य और सेनापति को धन्यवाद दिया, बधाई दी और पुरस्कृत किया।)

महाराज भरत – महामात्यजी! आपने बहुत चतुराई से काम किया है। सेनापतिजी भी पीछे नहीं रहे। बिना लड़े ही तीन खण्ड जीत लिये।

महामात्य – महाराज! इसमें हमारा क्या है? आपका ही सब पुण्य प्रताप है; आपने ही सब रास्ता सुझाया था। हमने तो आपकी आज्ञानुसार ही सब काम किया है।

सेनापति – महाराज! महामात्यजी ठीक ही कहते हैं। यह सब आपका ही पुण्य प्रताप है। हम तो आपके अनुचर हैं। आप जो आदेश देते हैं; उसका ही पालन करते हैं।

महाराज भरत – यह सब तो ठीक, पर बहुत दिनों से भगवान ऋषभदेव के दर्शन नहीं हुये। हम सब इसी में उलझे रहे। यह बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। लौकिक लाभ कोई लाभ थोड़े ही हैं। असली लाभ तो भगवान के दर्शन का है, प्रवचन सुनने का है।

चक्ररत्न का झंझट आ गया तो अब निभाना ही है।

महामात्य – नहीं महाराज, जनता की समस्याओं का समाधान भी आवश्यक है। सबकी आँखें आपकी ओर ही लगी रहती हैं। आपको जनता को भी संभालना है।

महाराज भरत – मेरा मन इसमें नहीं लगता।

सेनापति जयकुमार – महाराज! आप तो अपने आत्मकल्याण के कार्य में रहिये। ये सब कार्य तो आपके निर्देशानुसार हम सब संभालेंगे। आपको परेशान नहीं करेंगे।

महामात्य – महाराज! आप अपने तत्त्वचिन्तन में, आत्मध्यान में पूरा समय लगाइये। उसमें किसी भी प्रकार की कमी न रहने दीजिये।

जिसतरह अब तक का काम हो गया, आगे भी हो जावेगा।

तीन खण्ड तो साथ आ ही गये हैं। सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा तो सब तरह अनुकूल हो ही गये। शेष सोलह हजार भी हो जावेंगे।

आप चिन्ता न करें। हम पर भरोसा रखें।

महाराज भरत – आप पर तो पूरा भरोसा है। आप लोगों के दम पर ही सब काम चल रहा है। आप जैसे साथी मिलना भी बड़े भाग्य की बात है।

महामात्य – महाराज! हम तो आपके अनुचर हैं, साथी कहाँ? साथी तो बहुत बड़ी बात होती है। आप अनुचरों को भी साथी कहते हैं – यह आपकी महानता है।

महाराज भरत – हम सब साथी ही हैं। जगत के साथी तो हैं ही। मैं तो चाहता हूँ कि मुक्तिपथ के भी साथी बनें।

अब आप सभी जाएं, आराम करें; हम भी आराम करेंगे।

(दोहा)

तीन खण्ड तो इस तरह, जीते भरत नरेश।
अर्द्ध विजय पूरी हुई, हुआ नहीं संक्लेश।।

(नेपथ्य में मधुर संगीत के साथ मन्द स्वर में जो गीत चल रहा है, वह इसप्रकार है –)

(वीर)

अरे चक्रवर्तित्व हमारा ध्येय नहीं उद्देश्य नहीं।
बस हो अखण्ड यह भरतक्षेत्र है एकमात्र उद्देश्य यही।।
अरे हमारे साथ सभी आवें बस यही चाहते हम।
हम एक रहें हम एक रहें बस एक मात्र यह चाहें हम ।। १।।

इसी तरह दक्षिण-पश्चिम के राजाओं को याद किया।
अरे अखण्डित होने का उन सबको भी सन्देश दिया।।
उनको सब बातें समझाईं सन्देश दिया नजदीकी का।
वात्सल्य भाव से प्रेरित कर सन्देश दिया अपनेपन का ।। २।।

उन सबसे जुड़ने की अपील अत्यन्त सरल परिणामों से।
सभी तरह आश्वस्त किया सन्मान किया सद्भावों से।।
उन सबको बात समझ आई उत्साहित होकर सब आये।
जुड़ना सबने स्वीकार किया सब अपनेपन से ही आये ।। ३।।

अरे एकता से विकास की सीमाओं को समझाकर।
अर अखण्डता की असीम शक्ति की महिमा बतलाकर।।
सबके मन को उल्लसित किया प्रिय वचनों से सन्तुष्ट किया।
सबके मन को मन से जीता सबके मन को सन्तुष्ट किया ।। ४।।

तीन खण्ड में विद्यमान सब मुकुटबद्ध सोलह हजार।
राजाओं के दिल को जीता वात्सल्यभाव से समझाकर।।
प्रेमभाव से अपनाकर सबको ही अपना बना लिया।
अर एक बूँद भी खून बहाये बिना सभी को जीत लिया ।। ५।।[१]

पटाक्षेप

(क्रमशः)

१. अध्याय ३, छन्द ३२,३३,३४,३६,३७

छहढाला प्रवचन

तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियजय का वर्णन

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते।।
रस-रूप-गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग-विरोध पञ्चेन्द्री जयन पद पावने।।४।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की छठवीं ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के काल में निर्विकल्प शुद्धोपयोग हुआ था, उसके बाद शुद्धोपयोगरूप ध्यान कभी-कभी होता है। उन्हें सम्यग्दर्शन निरन्तर कायम रहता है; परन्तु उपयोग की एकाग्रता कायम नहीं रहती। मुनियों का उपयोग क्षण-क्षण में अन्तर्मुख होता है अर्थात् उन्हें निर्विकल्प ध्यान होता है। ध्यान के समय वे शान्ति के वेदन में ऐसे लीन हो जाते हैं, जैसे कोई मूर्ति बैठी हो।

हिरण अपना शरीर उनके शरीर से घिसे; सिंह गर्जना करे या ढोल बजते हों; तो भी उस तरफ उनका लक्ष्य नहीं जाता। उनका उपयोग तो मात्र स्वज्ञेय में ही ठहर गया है। उस समय के अतीन्द्रिय महा-आनन्द की क्या बात कहें? जब स्वरूप में से उपयोग बाहर आता है, तब सविकल्पदशा में पाँच समिति होती हैं और जब उपयोग अन्दर (स्वरूप में) जाता है, तब निर्विकल्प दशा में गुप्ति होती है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने मुनिदशा की भावना व्यक्त करते हुए 'अपूर्व अवसर' नामक काव्य में लिखा है –

विचरूँगा मैं एकाकी श्मसान में,
पर्वत में, जहाँ सिंह बाघ संयोग हो।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
मानो पाया परम मित्र का योग हो।।

अपूर्व अवसर में उन्होंने गुप्ति और समितियों का वर्णन भी किया है। आत्मा में स्थिरता गुप्ति है और गुप्तिरूप स्थिर न रहने पर जिन-आज्ञा अनुसार जो प्रवृत्ति होती है, उसे समिति कहते हैं। वह प्रवृत्ति भी प्रतिक्षण घटती रहती है और उसमें भी स्वरूप में स्थिरता का लक्ष्य रहता है।

धर्मात्मा जीवों के हृदय में ऐसी गुप्ति-समिति रूप मुनिदशा की भावना निरन्तर होती रहती है। जिसने अपना वीतरागी चैतन्यपद देखा है – ऐसे सम्यग्दृष्टि को ही मुनिदशा या मोक्षदशा की सच्ची भावना होती है। अज्ञानी तो बाहर के संयोग-वियोग को देखता है, वह अन्तर के अतीन्द्रिय भावों को नहीं पहिचानता। मुनिराज की अन्तरंग दशा एकदम शान्त होती है, उनकी वृत्ति शरीरादि के प्रति उदासीन और निरपेक्ष होती है। रत्नत्रय के धारक और सिद्धपद के साधक, साधु भगवन्त जीवन-मरण के प्रति समभावी होते हैं। वे निज-स्वरूप में गुप्त रहकर भी तीन गुप्ति के धारक होते हैं।

वे मुनिराज पाँचों इन्द्रियों के शुभ या अशुभ विषय अर्थात् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण और शब्दों में राग-द्वेष नहीं करते, इसलिए वे पाँचों इन्द्रियों को जीतनेवाले हैं। जहाँ अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का अतीशय वेदन वर्तता हो, वहाँ इन्द्रिय-विषयों की अधीनता कैसे हो

सकती है? कोई निन्दा करे या प्रशंसा करे, कोई बाण मारे या पूजा करे, निरस आहार मिले या सरस आहार मिले - इत्यादि अनुकूल या प्रतिकूल संयोगों में आकुलता नहीं होती। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होने पर ही ऐसी दशा हो सकती है। जिसे चैतन्य के आनन्द का वेदन नहीं होता, वहीं इन्द्रिय-विषयों में सुख मानता है। धर्मी ने तो सिद्ध समान चैतन्य सुख का स्वाद चखा है, उस सुख में लीनता के बल से वे पाँचों इन्द्रियों के विषयों को जीतते हैं।

छह खण्ड की उत्तम भोगसामग्री को भोगनेवाला सम्यग्दृष्टि उस सामग्री में किञ्चित् भी सुख नहीं मानता। वह अपने आत्मा को सुख स्वरूप अनुभव करता है, परन्तु अभी उसके परिणामों में विशेष स्थिरता नहीं हुई; इसलिए विषयों की तरफ उसका लक्ष्य जाता है। उसे राग-द्वेष भी होते हैं, परन्तु वह उन्हें दु:खरूप समझता है, जबकि मुनिराज को तो परिणामों की स्वरूप में विशेष स्थिरता के कारण ऐसी वीतरागता प्रगट हो जाती है कि बाह्य-विषयों के प्रति उन्हें राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते, इसलिए वे पञ्चेन्द्रियजयी हैं।

चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होने पर मन में कोई विचार उत्पन्न नहीं होते, बोलने और चलने-फिरने की कोई वृत्ति नहीं होती; यही मन-वचन और काया की गुप्ति है और अतीन्द्रिय आनन्द के बल से इन्द्रिय-विषयों में राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होना इन्द्रियजय है। इसप्रकार, चौथे छन्द में तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियजयों का वर्णन किया। **(क्रमश:)**

अपनी दृष्टि को परिणमनशील संयोगों और पर्यायों से हटाकर अपरिणामी द्रव्यस्वभाव की ओर ले जावें; क्योंकि अनित्यभावना के सम्यक् चिन्तन का यही सुपरिणाम है। - चिन्तन की गहराईयाँ, पृ. १११

नियमसार प्रवचन –

कारण समयसार

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा ९८ पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलत: इसप्रकार हैं –

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा।
सो हं इदि चिंतिज्जो तत्थेव य कुणदि थिरभावं ।।९८।।

(हरिगीत)

जो प्रकृति थिति अनुभाग और प्रदेश बंध बिन आतमा।
मैं हूँ वही - यह सोचता ज्ञानी करे थिरता वहाँ।।

प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध रहित जो आत्मा सो मैं हूँ – ऐसा चिन्तवन करता हुआ (ज्ञानी) उसी में स्थिरभाव करता है।

यहाँ (इस गाथा में), बन्धरहित आत्मा भाना चाहिये – ऐसी शिक्षा भव्य जीव को दी है।

शुभाशुभ मन–वचन–कायसम्बन्धी कर्मों से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है; चार कषायों से स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है; इन चार बन्धों से रहित सदा निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा सो मैं हूँ – ऐसी सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिये।

यह निश्चय–प्रत्याख्यान अधिकार है। शुद्धात्मा की भावना से ही सच्चा प्रत्याख्यान होता है; इसलिए यहाँ शुद्धात्मा की भावना का उपदेश करते हैं।

आत्मा का स्वभाव चारों प्रकार के बन्धन से रहित ज्ञानस्वरूप है, उसे पहिचानकर उसमें एकाग्रतारूप भावना करने पर राग का त्याग हो

जाता है – यह प्रत्याख्यान है। आत्मा चार प्रकार के पुद्गलकर्म के बन्ध से तो रहित है ही, साथ ही कर्म के कारणरूप विकारी भावों से भी रहित है। बन्ध और बन्ध के भावों से रहित शुद्धात्मा का श्रद्धान-ज्ञान करके उसमें एकाग्र होना ही सच्चा प्रत्याख्यान है, इसलिए यहाँ 'बन्ध रहित आत्मा की भावना करो' – ऐसी शिक्षा दी है।

शुभाशुभ मन-वचन-काय सम्बन्धी कर्मों से प्रकृति और प्रदेशबन्ध होता है तथा चार कषायों से स्थिति और अनुभागबन्ध होता है। इन चार बन्धनों से रहित सदा निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा है, वह मैं हूँ – ऐसी भावना सम्यग्ज्ञानी को निरन्तर करनी चाहिए।

वस्तुतः मन-वचन-काय के निमित्त से होनेवाले योग प्रकृति और प्रदेशबन्ध के कारण हैं। उनमें शुभ और अशुभ विशेषण तो कषाय के निमित्त से है। मन-वचन-काय की क्रिया से आत्मा रहित है। अन्दर योग का कम्पन होता है और कर्मपरमाणु आते हैं, उनसे भी आत्मा रहित है।

क्रोधादि कषाय कर्म की स्थिति और अनुभाग के कारण है। शुभ और अशुभ दोनों ही भाव कषाय हैं। जिस भाव से बन्धन होता है, उस भाव की भावना करे तो प्रत्याख्यान नहीं हो सकता; बन्धन का अभाव तो बन्ध के अभावरूप आत्मस्वभाव की भावना करने पर ही होता है। अशुभराग तो तीव्र कषाय है और शुभराग मन्द कषाय है, उन दोनों से आत्मा को बन्धन होता है।

बन्ध के चार प्रकार हैं। उनमें से प्रकृति और प्रदेश का कारण तो योग का कम्पन है तथा स्थिति और अनुभाग का कारण चारों कषाय है। सोलहकारण भावनारूप जो शुभराग है, उससे भी आत्मा की शान्ति प्रगट नहीं होती अपितु कर्म का बन्ध होता है; इसलिए शुभाशुभ भाव अथवा मन-वचन-काय की क्रिया आत्मा के संवर या प्रत्याख्यान का

कारण नहीं हैं, प्रत्याख्यान का कारण तो कर्मसम्बन्ध से रहित चैतन्य की भावना करना ही है।

आत्मा बन्धरहित है – ऐसा प्रथम ज्ञान करना चाहिए। कर्म और कर्म के सम्बन्ध से होनेवाले विकारीभावों से रहित परमार्थस्वरूप आत्मा मैं ही हूँ। कर्म की उपाधि मेरे स्वरूप में त्रिकाल नहीं है – ऐसी भावना ज्ञानी को निरन्तर करना चाहिए। ज्ञान बिना प्रत्याख्यान होता ही नहीं। जिससे कर्म बँधें, वह मैं नहीं हूँ, मेरा स्वरूप तो कर्म रहित है – ऐसा भान होने के पश्चात् उसकी अन्तर्भावना करके उसी में एकाग्रता करना प्रत्याख्यान है; इसलिए ऐसे आत्मा की भावना करने का यहाँ उपदेश है।

जो जीव भव्य है – योग्य है, उससे कहते हैं कि तेरा आत्मा चतुर्विध कर्मबन्धन से रहित है, तू उसी की भावना कर; वह भावना ही प्रत्याख्यान है। ऐसे आत्मा की भावना के बिना सच्चा प्रत्याख्यान नहीं होता। आत्मा का भान होकर उसमें जितनी वीतरागी स्थिरता रहे, उतना प्रत्याख्यान है।

अकेले योग में शुभ-अशुभपना नहीं होता, उसमें शुभ-अशुभपना तो कषाय मिलने पर कहा जाता है और उससे कर्मबन्ध होता है। जिस भाव से कर्म बँधता है, उस भाव से प्रत्याख्यान नहीं हो सकता।

आत्मा के भान बिना सच्चा सामायिक अथवा प्रत्याख्यान होता ही नहीं। एकसमय का सामायिक ङ्का संवर अल्पकाल में मुक्ति प्रदान करता है, परन्तु अज्ञानी के ऐसा सामायिक नहीं होता। चैतन्य के भान बिना होनेवाले सब भाव बन्ध के कारण हैं, इसलिए धर्मी जीव को प्रथम यह निर्णय करना चाहिए कि मेरा आत्मा द्रव्यकर्म और भावकर्म की उपाधि से रहित चैतन्यबिम्ब है – ऐसा भान होने पर उसकी भावना में जितनी एकाग्रता रहे, उतना संवर है और वही प्रत्याख्यान है। **(क्रमशः)**

समयसार की ४७ शक्तियों पर प्रवचन

स्वच्छत्व शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की ४७ शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(गतांक से आगे....)

अरे रे! यह दुःखी जीव चौरासी के अवतारों में रखड़ रहा है। कोई यहाँ अरबपति सेठ हो, पर मृत्यु होने पर एकक्षण में नरक में जाता है। भाई! उसकी पीड़ा की क्या बात करना? ऐसी अपार, अकथ्य इसकी वेदना और पीड़ा है कि उसे देखने मात्र से रोना आ जाय।

आहाहा...! ऐसे पीड़ाकारी स्थान में जीव ने अनन्त बार जन्म-मरण किया है; परन्तु उसे वह भूल गया है। यहाँ मनुष्यपर्याय में पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी क्या मिली, स्त्री-पुत्र-अनुकूल हुए तो इसे अभिमान हो गया। अरे भगवान! यह तू क्या कर रहा है? यह पागलपन तुझे कैसे हुआ? भाई! तेरी क्या चीज है, उसे देख तो सही।

जरा सुन्दर शरीर मिला नहीं कि उसके पीछे पागल हो गया। उसे नहलाता, धुलाता और सजाता है। दर्पण में मुख देखकर उसका शृँगार करता है और मानता है कि मैं रूपवान-स्वच्छ हो गया। अरे भाई! तूने यह कैसा पागलपन किया।

क्या शरीर को धोने से आत्मा स्वच्छ हो सकता है? शरीर को धोने से जब शरीर ही स्वच्छ नहीं होता तो आत्मा कैसे स्वच्छ हो सकता है?

स्वच्छता तो आत्मा का स्वभाव है, वह कभी शरीर को धोने से प्रगट नहीं होता; परन्तु स्वच्छता जिसका स्वभाव है – ऐसे निज आत्मस्वरूप के सन्मुख परिणमन करने से स्वच्छता प्रगट होती है।

अरे! अज्ञानी निजचैतन्य के स्वच्छस्वभाव को भूलकर देह के संस्कार (स्नानादि) में धर्म होना मानते हैं। परन्तु भाई! इससे कुछ हाथ आने वाला नहीं है।

'**हाड़ जले ज्यों लाकड़ी, केश जले ज्यों घास**' भाई! जिसप्रकार यह लकड़ी और घास जलती है, उसीप्रकार तू जिसका स्नानादि करता है – ऐसा यह रूपवान शरीर जलकर राख हो जावेगा। उसमें से आत्मा की शांति और स्वच्छता नहीं निकलती।

भगवान! तू तो चैतन्यमय अमूर्तिक प्रदेशों का पुंज है और तेरे ज्ञान में जड़-मूर्तिक पदार्थ ज्ञात होते हैं तो भी उपयोग में कभी मूर्तिक का आकार नहीं आता। ज्ञान को साकार कहा है, वहाँ आकार का अर्थ विशेषता सहित ज्ञान का परिणमन होना है। ज्ञान तो ज्ञानाकार ही है, वह ज्ञानाकार, स्व-आकाररूप रहकर ही अनेक परज्ञेयों को जानता है।

अहा! लोकालोक को जाननेवाला अनेकाकाररूप उपयोग है, वह ज्ञानाकार स्व-आकाररूप है, यही स्वच्छत्वशक्ति यहाँ कही जा रही है। अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक-अनेकाकाररूप उपयोग लक्षणवाली स्वच्छत्वशक्ति है।

आहाहा...! स्व-आश्रय से ज्ञान-दर्शन की कोई ऐसी निर्मलता-स्वच्छता होती है कि उसके परिणमन में लोकालोक

झलकता है, प्रतिभासित होता है, ज्ञात होता है।

आहाहा...! अन्तर्मुख होकर उन्हें देखें तो अन्दर में विस्मयकारी अद्‌भुत चैतन्य का निधान पड़ा है, परन्तु अज्ञानी प्राणी बाह्य धन एवं देहादि में मूर्छित हो रहे हैं।

जिसप्रकार दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में घटपटादि प्रकाशित होते हैं, उसीप्रकार **आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।**

देखो! जैसे स्वच्छत्व दर्पण की स्वाभाविक शक्ति है और उसकी पर्याय में घट-पटादि प्रकाशित होते हैं। वे घट-पटादि दर्पण में प्रवेश नहीं करते; परन्तु दर्पण की स्वच्छता में मात्र दिखायी देते हैं; उसीप्रकार भगवान आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति की निर्मलपर्याय है।

तेरी स्वच्छता में लोकालोक ऐसा स्पष्ट भासित होता है कि मानो उसमें प्रविष्ट हो गया है; परन्तु वास्तव में लोकालोक कभी आत्मा के उपयोग में प्रवेश नहीं करता, लोकालोक तो बाहर ही है; परन्तु आत्मा का स्वच्छ उपयोग ही उसके प्रतिभासरूप से परिणमित हुआ है।

आहाहा...! वास्तव में लोकालोक नहीं, बल्कि आत्मा की स्वच्छता ही ज्ञात होती है। ऐसी स्वच्छत्वशक्ति आत्मा में त्रिकाल है और वह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापती है। उपयोग की स्वच्छता का कोई ऐसा अचिन्त्य स्वभाव है कि पर के सामने देखे बिना ही स्वयं निजस्वभाव से ही लोकालोक के जाननेरूप से परिणमित हो जाती है। इस बात को समझे बिना अज्ञानी जीव भवसमुद्र में गोते खाते हैं।

परमात्मप्रकाश में उपसंहार करते हुए श्री ब्रह्मदेवसूरि कहते हैं कि इस परमात्मप्रकाश की टीका को जानकर भव्यजनों को ऐसा विचार करना चाहिए कि – 'शुद्ध निश्चय से मैं एक (मात्र) तीन लोक में, तीन काल में, मन-वचन-काय से तथा कृत-कारित-अनुमोदना से उदासीन हूँ।

निज निरंजन शुद्ध आत्मा के सम्यक् श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् अनुष्ठानरूप निश्चय रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानन्दरूप सुखानुभूतिमात्र लक्षणरूप मैं स्वसंवेदनज्ञान से स्वसंवेद्य हूँ।

राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँच इन्द्रियों के विषय व्यापार, मन-वचन-काय का व्यापार, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म; ख्याति, लाभ, पूजा, दृष्ट, श्रुत तथा अनुभूत भोगों की आकांक्षारूप माया, मिथ्यात्व, निदान आदि सभी विभावपरिणामों से रहित हूँ – **सभी जीव ऐसे ही हैं।**

आहाहा...! **यह आत्मा अनन्त गुणों का संग्रहालय, त्रिकाल शुद्ध, पवित्र, स्वच्छ चैतन्यमय महापदार्थ है। उसकी अनन्त शक्तियों, स्वभावों को जानकर निज द्रव्य के सन्मुख दृष्टि करना सम्यग्दर्शन है और वही धर्म का आरंभ है। (क्रमशः)**

अब समय आ गया है कि हम वस्तु के परिणमनस्वभाव को सहजभाव से स्वीकार करें; संयोगों की क्षणभंगुरता का आपत्ति के रूप में नहीं, सम्पत्ति के रूप में प्रसन्नचित्त से स्वागत करें; संयोग-वियोगों में सहज समताभाव रखें, संयोगों को मिलाने-हटाने के निरर्थक विकल्पों से यथासंभव विरत रहें; अपनी दृष्टि को परिणमनशील संयोगों और पर्यायों से हटाकर अपरिणामी द्रव्यस्वभाव की ओर ले जावें; क्योंकि अनित्यभावना के सम्यक् चिन्तन का यही सुपरिणाम है। – चिन्तन की गहराईयाँ, पृष्ठ १११

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : राग को जीव का कहें या पुद्गल का ?

उत्तर : राग को जीव अपनी पर्याय में स्वयं करता है; अतः पर्याय दृष्टि से जीव का है। द्रव्यदृष्टि से जीवस्वभाव में राग है ही नहीं; अतः राग जीव का नहीं, पुद्गल के लक्ष से होता होने से पुद्गल का है।

प्रश्न : एक खूँटे से बाँधकर रखिये न ?

उत्तर : जिस अपेक्षा से कहा जाता है, उस अपेक्षा से खूँटा मजबूत ही है। राग को सर्वथा पर का ही माने तो कभी उसका अभाव नहीं हो सकेगा। अतः पहले राग स्वयं ही अपने अपराध से करता है, कर्म नहीं कराते; ऐसा निर्णय करके फिर स्वभावदृष्टि कराने के लिए राग मेरा स्वरूप नहीं, औपाधिक भाव है – ऐसा कहा है। यहाँ राग को कर्मजन्य कहकर राग का लक्ष्य छुड़ाकर स्वभाव का लक्ष्य कराया है।

प्रश्न : समयसार गाथा 6 में समस्त अन्य द्रव्य के भावों से भिन्नपने उपासने में आता हुआ 'शुद्ध' कहा जाता है – ऐसा कहा। यहाँ विकार से भिन्न उपासने में आता है – ऐसा क्यों नहीं कहा ?

उत्तर : अन्य द्रव्य के भावों से भिन्न उपासने पर विकार और पर्याय के ऊपर का लक्ष्य जाता है।

प्रश्न : आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्तपने नहीं होता, इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर : आत्मा शुभ-अशुभरूप नहीं होता। यदि शुभ-अशुभरूप हो तो प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हो, किन्तु शुद्धात्मा शुभाशुभरूप से नहीं परिणमता, इसलिए प्रमत्त-अप्रमत्तरूप से भी नहीं होता। अप्रमत्त सातवें गुणस्थान

से तेरहवें तक है, उस पर्यायरूप आत्मा नहीं होता। आत्मा एकरूप ज्ञायकभावस्वरूप है। शुभाशुभरूप नहीं होता, इसलिए प्रमत्तरूप नहीं होता और प्रमत्तरूप हो तो उसका अभाव करके अप्रमत्तरूप हो। आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त के भेदरूप नहीं होता। एकरूप ज्ञायकभाव स्वरूप ही है।

प्रश्न : राग-द्वेष को जीव की पर्याय कहा है और फिर उसी को निश्चय से पुद्‌गल का परिणाम भी कहा। अब हम क्या निश्चय करें ?

उत्तर : राग-द्वेष है तो जीव का ही परिणाम; किन्तु वह पुद्‌गल के लक्ष्य से होता होने से और जीव का स्वभावभाव न होने से तथा स्वभावदृष्टि कराने के प्रयोजन से, पुद्‌गल का कहा गया है; क्योंकि निमित्ताधीन होने वाले भाव को निमित्त का भाव है, पुद्‌गल का भाव है - ऐसा कहने में आता है।

प्रश्न : प्रथम भूमिका में जिज्ञासु जीव राग-द्वेष के भाव को अपना माने या पुद्‌गल का माने ?

उत्तर : रागादिभाव अपने में अपने अपराध से होते हैं - ऐसा जानकर, श्रद्धा में से निकाल दें अर्थात् ऐसी श्रद्धा करे कि यह रागादि के परिणाम मेरे त्रिकाली स्वभाव में नहीं हैं।

प्रश्न : राग आत्मा का है या पुद्‌गलकर्म का? दोनों प्रकार के कथन शास्त्र में आते हैं। कृपया रहस्य बतलाइये?

उत्तर : वस्तु की सिद्धि करनी हो, तब राग व्याप्त है और आत्मा व्यापक है अर्थात् राग आत्मा का है - ऐसा कहा जाता है। जब दृष्टि शुद्धचैतन्य की हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, तब निर्मलपर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक है। सम्यग्दृष्टि का जो राग है, वह पुद्‌गल कर्म का कहा जाता है, क्योंकि ज्ञानी जीव दृष्टि अपेक्षा राग से भिन्न पड़ गया है, इसलिए उसके राग में कर्म व्यापता है ऐसा कहा जाता है। **(क्रमशः)**

समाचार दर्शन -

शास्त्री विद्यार्थियों के लिए समर्पित २४ वाँ आध्यात्मिक ई-शिक्षण शिविर सम्पन्न

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक १० से १७ अक्टूबर, २०२१ तक जिनागम के महत्त्वपूर्ण विषयों का व्यवस्थित अध्ययन करानेवाला २४ वाँ आध्यात्मिक ई-शिक्षण शिविर पूजन, जिनेन्द्रभक्ति, प्रवचन, कक्षा आदि अनेक मांगलिक आयोजनों सहित सम्पन्न हुआ।

शिविर में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के १८९, आचार्य अकलंक दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय बांसवाड़ा के २७, आचार्य धरसेन दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय कोटा के ५१, शाश्वतधाम उदयपुर के ६६ एवं ज्ञानोदय भोपाल के ४७ - इसप्रकार कुल ३८० विद्यार्थियों सहित हजारों की संख्या में साधर्मियों ने जैनदर्शन के सैद्धान्तिक विषयों का गहराई से अध्ययन किया।

दिनांक १० अक्टूबर, २०२१ को प्रात: आयोजित उद्‌घाटन समारोह का ध्वजारोहण श्रीमान ताराचंदजी सोगानी, जयपुर एवं शिविर उद्‌घाटन श्रीमान ध्याताजी बजाज सुपुत्र श्री प्रेमचंदजी बजाज परिवार, कोटा ने किया। तत्पश्चात् अनिकाजी जैन सुपुत्री श्रीमती श्रीजी धर्मपत्नी श्री अश्विनीजी जैन परिवार, दिल्ली ने आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी एवं श्रीमान चम्पालालजी भबूतमलजी भण्डारी परिवार, बैंगलोर ने आध्यात्मिक सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के चित्र का अनावरण किया।

तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं ट्रस्ट के अध्यक्ष श्रीमान सुशीलकुमारजी गोदिका जयपुर के मंगल सान्निध्य में सभा की अध्यक्षता श्रीमान प्रेमचंदजी बजाज कोटा ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमान बसंतभाई एम. दोषी मुंबई, विशिष्ट अतिथि के रूप में श्रीमान महिपालजी 'ज्ञायक' परिवार ध्रुवधाम बांसवाड़ा, श्रीमान अशोकजी जैन परिवार तीर्थधाम ज्ञानोदय भोपाल, श्रीमान वीरेशजी कासलीवाल परिवार सूरत एवं श्रीमान नितिनभाई सी. शाह मुंबई के अतिरिक्त बाल ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद, पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा एवं पण्डित

धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा का समागम प्राप्त हुआ। मंचासीन अतिथियों का स्वागत डॉ. शांतिकुमारजी पाटील एवं पण्डित पीयूषजी शास्त्री ने किया।

शिविर का परिचय पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने तथा संस्था का परिचय व सभा का संचालन पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया। मंगलाचरण विदुषी प्रतीतिजी मोदी ने किया।

शिविर रथ के प्रमुख सारथी :- श्रीमती सुनीताजी धर्मपत्नी प्रेमचंदजी बजाज कोटा परिवार, श्रीमती सुशीलाजी धर्मपत्नी अजितप्रसादजी जैन सुपुत्र वैभवजी जैन परिवार दिल्ली, श्रीमती रेखाजी धर्मपत्नी संजयजी दीवान सुपुत्र तीर्थेश एवं सुपुत्री मोक्षा दीवान परिवार सूरत, श्रीमती कुसुमजी धर्मपत्नी श्री प्रदीपजी चौधरी किशनगढ़, श्रीमती आरतीजी धर्मपत्नी अशोकजी पाटनी सिंगापुर, श्रीमान विपुलजी मोटानी मुंबई एवं श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल कोलकाता का योगदान प्राप्त हुआ।

प्रवचनों की शृंखला :- शिविर में प्रतिदिन प्रात: डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के अरहंत चैनल के माध्यम से प्रवचनसार ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार पर प्रवचन का प्रसारण एवं आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के इष्टोपदेश ग्रन्थ के आधार पर सी.डी. प्रवचनों का प्रसारण किया गया। तत्पश्चात् तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा समयसार बंधाधिकार पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला।

दोपहर में बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा के नियमसार एवं अध्यात्मरत्नाकर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल जयपुर के कारण-कार्य व्यवस्था विषय पर वीडियो प्रवचन तथा रात्रि में मुख्य प्रवचन के रूप में अध्यात्मवेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा स्वरचित नवीन कृति दोहा व रोलाशतक पर प्रवचनों का लाभ मिला।

प्रवचनसार व्याख्यानमाला के अन्तर्गत शुद्धोपयोगाधिकार पर पण्डित राजेन्द्रजी जबलपुर, ज्ञान-सुखाधिकार पर पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, शुभपरिणामाधिकार पर पण्डित संजयजी शास्त्री कोटा, द्रव्यसामान्य प्रज्ञापनाधिकार पर पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल, द्रव्यविशेष प्रज्ञापनाधिकार पर डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, ज्ञानज्ञेयविभाग अधिकार पर पण्डित सुनीलजी शास्त्री राजकोट, चरणानुयोगसूचक चूलिका पर डॉ. दीपकजी वैद्य जयपुर एवं शुभोपयोग प्रज्ञापन व

पंचरत्न अधिकार पर पण्डित शैलेषभाई शाह तलोद के व्याख्यानों का लाभ मिला।

शिविर में संचालित कक्षाएँ :– बाल ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना द्वारा सप्त व्यसन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली द्वारा प्रवचनसार, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील जयपुर द्वारा सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा नयचक्र, डॉ. वीरसागरजी शास्त्री दिल्ली द्वारा स्वयंभू स्तोत्र : एक परिचय, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री उदयपुर द्वारा तत्त्वार्थसूत्र, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर द्वारा मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र का स्वरूप, डॉ. मनीषजी शास्त्री मेरठ द्वारा जैन श्रुत परम्परा का परिचय, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा द्वारा देवागमस्तोत्र, डॉ. प्रवीणजी शास्त्री बांसवाड़ा द्वारा पंचलब्धि, पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री जयपुर द्वारा रत्नकरण्ड श्रावकाचार एवं पण्डित शुभमजी शास्त्री भोपाल द्वारा पुण्य और पाप का स्वरूप विषय पर कक्षाएँ आयोजित की गई।

पूजन एवं जिनेन्द्रभक्ति का समस्त आयोजन पण्डित जिनेन्द्रजी शास्त्री, पण्डित रिमांशुजी शास्त्री, पण्डित समकितजी शास्त्री एवं पण्डित दिव्यांशजी शास्त्री द्वारा किया गया। कार्यक्रमों का संचालन पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री जयपुर ने किया। शिविर के ऑनलाईन संचालन में पण्डित सर्वज्ञजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित रूपेन्द्रजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित गौरवजी शास्त्री जयपुर एवं पण्डित आकाशजी शास्त्री अमायन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

पारस टी. वी. पर पुरुषार्थसिद्ध्युपाय

युवा विद्वान **डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर** द्वारा प्रतिदिन टी.वी. के पारस चैनल पर **रात्रि १० बजे** छहढाला ग्रन्थ पर नियमित प्रवचनों के सफलतापूर्वक प्रसारण के बाद अब, **दिनांक ९ अक्टूबर, २०२१** से **रोजाना रात्रि १० बजे** आचार्य अमृतचन्द्र देव द्वारा लिखित **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** ग्रन्थ पर प्रवचनों का प्रसारण किया जा रहा है।

आप स्वयं लाभ लेवें एवं औरों को भी अवश्य बतायें।

दिल्ली में क्षमावाणी पर्व सानन्द सम्पन्न

कहान समयसार सम्प्राप्ति शताब्दी वर्ष के अवसर पर आयोजित आत्मार्थी ट्रस्ट, दिव्यदेशना ट्रस्ट एवं ब्राह्मी-सुन्दरी विद्यानिकेतन, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, दिल्ली एन.सी.आर. द्वारा आयोजित क्षमावाणी महापर्व पर मंगलवार, दिनांक २१ सितम्बर को दिल्ली, फरीदाबाद, मेरठ, खतौली आदि स्थानों से पधारे सैकड़ो साधर्मियों की उपस्थिति में सानन्द सम्पन्न हुआ।

प्रात: पूज्य गुरुदेवश्री के मांगलिक प्रवचन के साथ समारोह प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर का परोक्ष रूप से क्षमावाणी पर एवं ख्यातिप्राप्त युवा विद्वान डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर के प्रत्यक्ष रूप से समयसार की छटवी गाथा पर प्रवचनों का लाभ मिला। साथ ही स्थानीय विद्वानों में डॉ. सुदीपजी शास्त्री दिल्ली व डॉ. मनीषजी शास्त्री मेरठ का उद्‌बोधन भी प्राप्त हुआ।

सभा के अध्यक्ष श्रीमान प्रेमचन्दजी बजाज कोटा, मुख्य अतिथि माननीय श्रीमान सतेन्द्रजी जैन (स्वास्थ्य मंत्री दिल्ली सरकार) विशिष्ट अतिथि डॉ. सरबजीतजी शर्मा (Central Government Senior Counsel) का विशेष समागम मिला।

समारोह के ध्वजारोहणकर्ता श्री अजितप्रसादजी वैभव जैन परिवार, मुख्य आमंत्रणकर्ता श्री मनीषजी सूरजमलजी विहार, सह आमंत्रणकर्ता श्री वज्रसेनजी शोभितजी जैन विश्वासनगर, मंच उद्‌घाटनकर्ता श्री सुभाषजी जैन बाहुबली के अतिरिक्त पंचपरमागम विराजमानकर्ता व चित्र अनावरणकर्ता परिवार भी उपस्थित रहे। इस अवसर पर ब्राह्मी सुंदरी कन्या विद्या निकेतन की ओर से श्रीमान प्रेमचंदजी बजाज कोटा का अभिनन्दन किया गया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित संजयजी शास्त्री, कोटा के संचालन एवं पण्डित सुरेन्द्रजी शास्त्री के संयोजन में सम्पन्न हुआ।

चैंपियंस ऑफ चेंज राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित पण्डित शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल

दिनांक ३० सितम्बर, २०२१ को शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, जयपुर को मुंबई की कोलाबा स्थित ताजमहल होटल में महाराष्ट्र और गोवा के राज्यपाल भगतसिंहजी कोश्यारी द्वारा **चैंपियंस ऑफ़ चेंज** पुरस्कार से नवाज़ा गया। उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के.जी. बालाकृष्णन एवं उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश ज्ञानसुधाजी मिश्रा ने शिक्षा और उद्यमिता के क्षेत्र में जयपुर से शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल के नाम का चयन किया।

''चैंपियंस ऑफ चेंज'' पुरस्कार इंटरैक्टिव फोरम ऑन इंडियन इकॉनमी संस्था द्वारा सकारात्मक प्रयासों से विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन लाने वाले राजनेता, सामाजिक कार्यकर्ता, उद्यमियों को दिया जाता रहा है। गांधीवादी मूल्यों, स्वच्छता, सामुदायिक सेवा और सामाजिक विकास आदि इसके प्रमुख उद्देश्य हैं।

एस.पी. भारिल्ल दो बेस्ट्सेलर किताब 'जीने के रहस्य १८ चैप्टर्स' व 'ज़िंदगी बेनक़ाब' के लेखक हैं। पिछले २२ वर्षों से अपने प्रेरक सेमिनारों व ट्रेनिंग के माध्यम से भारत में उद्यमिता को बढ़ावा दे रहे हैं। जिसके कारण आज लाखों लोगों ने अपने सपनों को साकार किया है। आपके सेमिनारों को हज़ारों की संख्या में देश के कोने-कोने से आने वाले उद्यमियों द्वारा खूब सराहा जाता है।

साथ ही आपके देश-विदेश में किए गए आध्यात्मिक प्रवचनों ने अहिंसा आदि नैतिक मूल्यों को बढ़ावा दिया है। आप आध्यात्मिक सिद्धांतों की शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाने हेतु अनेक चेरिटेबल संस्थाओं का कुशल नेतृत्व कर रहे हैं। सोशल मीडिया पर आपके लाखों की संख्या में सब्सक्राइबर्स और व्यूअर्ज़ हैं, जिससे प्रेरित होकर लाखों लोगों के जीवन में सकारात्मक बदलाव आए हैं।

आपको 2006 में समाज कल्याण में उल्लेखनीय योगदान हेतु 'इंदिरा गांधी प्रियदर्शिनी' अवार्ड से भी नवाज़ा गया था। समारोह के पश्चात् मीडिया से मुख़ातिब होते हुए भारिल्लजी ने कहा कि यह पुरस्कार उन सभी लोगों को समर्पित है, जो मेरे

साथ इस मिशन में जुड़े हुए हैं। हम लोगों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाने हेतु प्रयासरत हैं। उद्यमिता से व्यक्ति आत्मनिर्भर बनता है, उसका आत्मसम्मान बढ़ता है, परिवार में ख़ुशहाली आती है और शिक्षा से चारित्रिक विकास होता है। चरित्र के बिना सफलता अधूरी है, इसीलिए उद्यम से जीवन में सफलता और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा से चारित्रिक विकास करना मेरा मिशन है। करोड़ों भारतीयों में उद्यम को चलाने के लिए आवश्यक कौशलता और योग्यता विकसित करके हम सभी मिलकर विश्व पटल पर भारत देश की अलग पहचान बना सकते हैं। इस पुरस्कार से हमारे मिशन को एक गति मिली है, जिसके लिए मैं राज्यपाल भगतसिंह कोश्यारीजी और देश के पूर्व मुख्य न्यायधीश के.जी. बालाकृष्णनजी, न्यायाधीश ज्ञानसुधा मिश्राजी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

समारोह में महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री देवेन्द्र फडणवीस, महाराष्ट्र के गृह मंत्री दिलीप वलसे पाटिल, महाराष्ट्र कांग्रेस के अध्यक्ष नाना पटोले, पद्मश्री से सम्मानित सिन्धुताई सपकाल, फ़िल्म जगत से जैकी श्रॉफ़, दिया मिर्ज़ा, नवाज़ुद्दीन सिद्धिकी, उदित नारायण व मोतीलाल ओसवाल को भी नवाज़ा गया।

हुए हैं ना होंएगें मुनीन्द्र कुन्दकुन्द से

सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट एवं मातृभाषा उन्नयन संस्था के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 30 अगस्त 2021 को जैनवाङ्मय में **आचार्य कुन्दकुन्द के योगदान** पर विचार-विमर्श का आयोजन किया गया।

आचार्य कुन्दकुन्द के गहन अध्येता डॉ. वीरसागरजी शास्त्री, दिल्ली की अध्यक्षता में आयोजित इस परिचर्चा के मुख्यवक्ता अध्यात्मवेत्ता डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर के अतिरिक्त जैनशोध संस्थान, दिल्ली के निर्देशक डॉ. विजयजी जैन मुजफ्फरनगर, राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ. श्रेयांसजी जैन, बड़ोत एवं आचार्य कुन्दकुन्द पी.जी. कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. मनीषजी शास्त्री, मेरठ रहे।

सत्र संचालन श्री अंकुरजी शास्त्री भोपाल एवं मंगलाचरण कु. ऐनी जैन, जयपुर ने किया।

वैराग्य समाचार

१. जयपुर निवासी **श्री संजयजी बंसल** सुपुत्र श्री जयकुमारजी बंसल, चंदेरी का **दि. १८ अक्टूबर, २१** को ५८ वर्ष की आयु में आकस्मिक निधन हो गया। आप श्री टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक, जैनदर्शनाचार्य, ज्योतिषाचार्य एवं गहन तत्त्वचिंतक थे।

तत्त्व के प्रति गहरी रुचि के कारण ही आप सदा त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव की चर्चा करते रहते थे। जैनपथ प्रदर्शक पत्रिका के सम्पादन कार्य में भी आपने अपना योगदान दिया था। आप श्रीमती गुणमालाजी भारिल्ल के भतीजे थे।

२. कोटा निवासी **श्रीमती इन्द्राजी जैन ध.प. श्री राजेन्द्रजी बज का दि. १२ अक्टूबर, २१** को शांत परिणामों से देहविलय हो गया। आप आदरणीय स्व. श्री नेमीचन्दजी पाटनी की ज्येष्ठ पुत्री एवं तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की समधन थी।

बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पली-बढी आप तत्त्वचिंतक, धर्मपरायण, प्रबुद्ध विचारक, कुशल वक्ता एवं सरलस्वभावी विदुषी महिला थी।

श्रद्धेय विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी का सान्निध्य भी आपको मिला। फलस्वरूप कोटा से संचालित सभी धार्मिक गतिविधियों में आपका सक्रिय योगदान रहता था। तत्त्वज्ञान के बल से ही अन्तिम समय में भी आप शांत एवं तत्त्वचिंतन की गहराई में निमग्न रहा करती थी। आप श्रीमती अल्पनाजी भारिल्ल की माताजी एवं पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल, मुम्बई की सासूमाँजी थी। आपकी स्मृति में बज परिवार द्वारा १ लाख से अधिक की दानराशि घोषित की गई, जिसके अन्तर्गत पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को ११, ०००/- रुपये की राशि प्राप्त हुई। एतदर्थ धन्यवाद!

३. देवलगाँवराजा निवासी **श्रीमती कौसल्याबाई लालचन्दजी बण्ड** का **दिनांक ११ सितम्बर, २१** को शान्त परिणामों के साथ देहविलय हो गया। आप टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक पण्डित उमाकान्तजी बण्ड की मातुश्री थी।

४. श्री टोडरमल महाविद्यालय मेंअध्ययनरत शास्त्री तृतीय वर्ष के छात्र **दर्शन सिंघई**, बलेह (म.प्र.) के पिताश्री **दीपकजी सिंघई** का **दि. १५ अक्टूबर, २१** को अल्पायु में अकस्मात् देहविलय हो गया है।

दिवंगत सभी आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - ऐसी भावना है।

ढाईद्वीप निर्माण से संबंधित कार्यों का निरीक्षण करते हुए ट्रस्टीगण...

R.N.I. No. 38278/83
Postal Regd. No. JaipurCity/421/2021-23

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन के बढ़ते चरण...

प्रकाशन तिथि : 21 अक्टूबर 2021

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**